भारतीय प्रतिमा शिल्प पर कालखंड का प्रभाव

- लेखक : ललित शर्मा
- तारीख : July 19, 2019

शिल्पकला में समय के अनुसार परिवर्तन दिखाई देता है। अगर हम निरीक्षण करते हैं तो छठवीं शताब्दी से लेकर अद्यतन यह परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देता है। शिल्प के विषय में शिल्पकार निर्माण की स्वतंत्रता भी रखते तो शास्त्र सम्मत प्रतिमाओं का निर्माण भी करते थे। प्रतिमा शिल्प के वस्त्राभूषण अलंकरण, वाद्ययंत्रों, शरीर सौष्ठव आदि में परिवर्तन के साथ लावण्यता स्पष्ट दिखाई देती है।

ऐसा कौन अभागा है, जिसे गायन, वादन, नृत्य दर्शन एवं संगीत श्रवण न रुचता होगा। प्रकृति में चहूं ओर संगीत भरा पड़ा है, कहीं शुन्यता नहीं है। इसी संगीत से मनुष्य ने भी स्वयं को जोड़ा एवं विभिन्न ध्वनियों के लिए वाद्य निर्मित किए एवं स्वयं को उसके संगीत में डूबों दिया। कैसा भी मनुष्य हो वह एक बार तो कर्णप्रिय संगीत सुनकर थिरक ही उठेगा।

> गायन-वादन हमारी प्राचीन विद्या है। पता नहीं कितने हजारों वर्षों से बांसुरी की मधूर तान मनुष्य हृदय के तारों को तरंगित कर रही है। वैसे माना जाता है कि सभी वाद्य यंत्रों में बांसुरी एवं मृदंग का प्रयोग मानव ने पहले प्रारंभ किया। भारत से लेकर युरोप जर्मनी तक प्राचीन काल में बांसुरी की उपस्थिति मिलती है। लगभग 40,000 से 35,000 साल पहले की कई बांसुरियां जर्मनी के स्वाबियन अल्ब क्षेत्र में पाई गई, जो हड्डी की बनी हुई हैं।

भारत के मुरलीधर, वेणुगोपाल, कृष्ण जग प्रसिद्ध हैं, जिनकी बांसुरी की मधुर तान पर चराचर जगत मोहित है। गायन एवं वादन का संबंध देह एवं देही की तरह हैं, एक के बिना दूसरा अधूरा हो जाता है। सुर ताल का संगम मनुष्य को किसी और ही दुनिया में ले जाकर स्वर्गिक आनंद दिलाता है। देवताओं से लेकर आम नागरिक तक को संगीत ने प्रभावित किया। गायन-वादन के साथ नृत्य भी जुड़ा हुआ है। बिना वाद्य के नृत्य की ताल नहीं बैठती। यह प्राचीन काल से वर्तमान तक मनोरंजन का साधन बने हुए हैं।

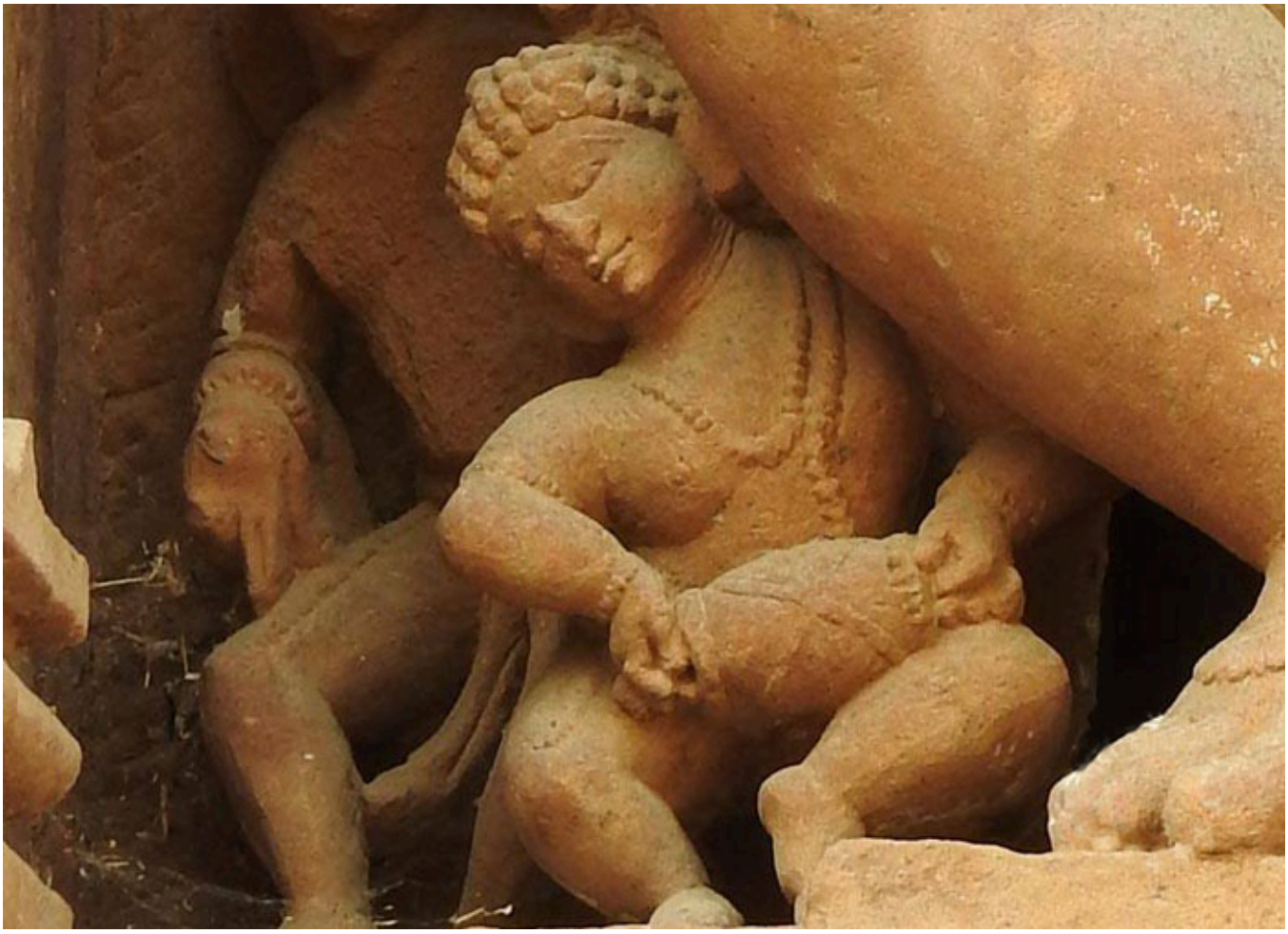

कलचुरी एवं चंदेलों द्वारा निर्मित मंदिरों का मूर्ति शिल्प इतना जीवंत एवं विविध विषयक है कि लगता है गागर में सागर समा गया है। जितना ढूंढो, उससे अधिक पाओ जैसे हालत हैं। प्राचीन शिल्प में तत्कालीन वाद्य यंत्रों एवं नृत्य का ज्ञान होता है। शिल्पकारों ने नृत्य की भाव भंगिमा को अपने शिल्प में बखुबी उतारा है।

भारतीय संगीत की अपनी समृद्ध परम्परा है, जो गुरु से शिष्य को मिलती है। चित्र में दिखाई गई स्थानक प्रतिमा में देवांगना मुरली वादन कर रही है तथा एक अन्य स्त्री बैठे हुए, कान पर हाथ लगाकर आलाप ले रही है। आलाप एवं मुरली की तान का मधुर कर्णप्रिय संगम प्रात: कालीन राग भैरव वातावरण में रस घोल रहा है। सोचिए वह सुबह कैसी होगी, जब आपकी आँखें खुले और कानों में मधुर संगीत की स्वर लहरियाँ सुनाई दे।

> दूसरा प्रतिमा शिल्प इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है, इसमें नृत्य गणपति दिखाई दे रहे हैं। नटराज शिव के अलावा गणपति ही ऐसे देव हैं जिनकी नृत्य करते हुए प्रतिमाएँ शिल्प में दिखाई देती हैं। मंगलमुर्ति गणेश की नृत्य प्रतिमा शुभ एवं मांगलिक मानी जाती है। जब हृदय प्रसन्न हो एवं आल्हाद के भाव उठ रहे हो तभी नृत्य के लिए पैर थिरकते हैं तथा प्रसन्न हृदय देवता से जो भी वरदान मांगा जाए वह मिलना निश्चित है।

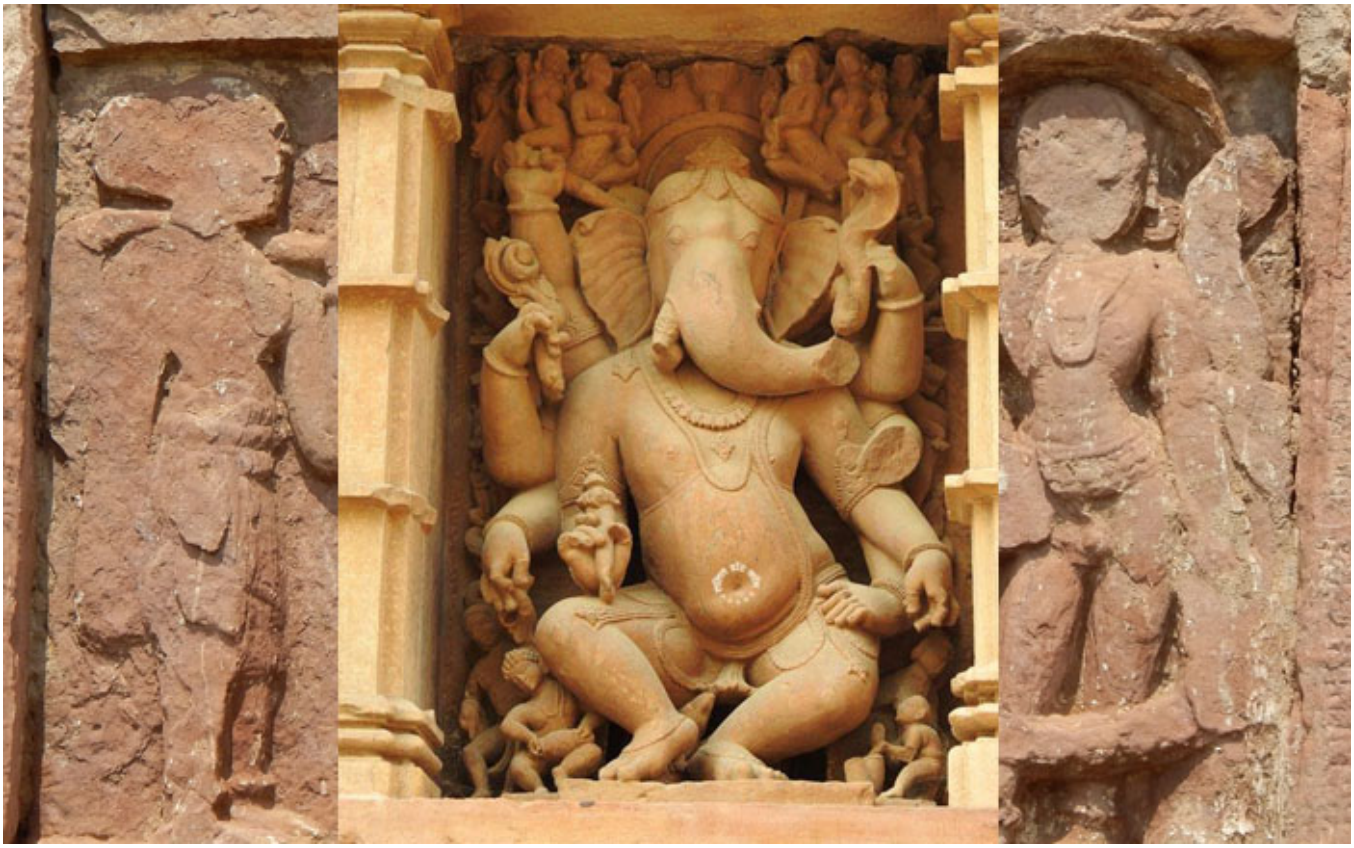

गणपति की प्रतिमा में बांए तरफ़ एक व्यक्ति नृत्य के साथ ताल मिलाने के लिए ड्रम बजाता दिखाई दे रहा है। जबकि ड्रम तो प्राश्चात्य वाद्य माना जाता है। इसका चलन भारत में लगभग अट्ठारवीं सदी में प्रारंभ हुआ, परन्तु यहाँ ड्रम का वादन हमें नवमीं शताब्दी में दिखाई दे रहा है। है न दिमाग पर जोर डालने की बात। गणपति के दूसरी तरफ़ एक वाद्यक मृदंग बजा रहा है। देखने से ऐसा लगता है कि गणपति भारतीय एवं पाश्चात्य वाद्य के फ़्यूजन पर नृत्य कर रहे हैं। कुल मिलाकर रस संगीत में ही है।

समय के साथ स्थापत्य एवं शिल्प के विषयों में बदलाव आता है, जिससे उसके कालखंड की जानकारी मिलती है। छठवीं शताब्दी से लेकर अद्यतन हम देखते हैं तो शनै-शनै बदलाव दिखाई देता है। जो शिल्प के लावण्य, शरीर सौष्ठव, वस्त्राभूषण अलंकरण आदि में परिलक्षित होता है। इस बदलाव को देखने के लिए मीमांसक का नजरिया चाहिए। जहाँ बड़ा बदलाव हो वह हर किसी को दिखाई देता है और अपना ध्यान आकृष्ट करता है।

प्राचीन भारतीय परम्परागत वाद्य यत्रों में मृदंग, ढोल, नगाड़े, मुहरी, सिंगी वीणा, वेणु आदि दिखाई देते हैं। जिनमें स्थान विशेष एवं वादक की पसंद के हिसाब से बदलाव होता है। यह बदलाव शिल्प में भी दिखाई देते हैं। जिस तरह खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर की भित्ति में स्थापित नृत्य गणपति के दांई तरफ़ ढोल एवं बांई तरफ़ ड्रम वादक दिखाई देता है। यहाँ ड्रम दिखाई देते ही हमें एकदम से बदलाव दिखाई देता है। क्योंकि ड्रम पश्चिम का वाद्य माना जाता है। परन्तु शिल्प से जाहिर होता है कि यहाँ ड्रम जैसा वादय पूर्व से ही उपस्थित था।

कुछ ऐसा ही शिल्प में हमें बस्तर स्थित दंतेश्वरी मंदिर में दिखाई देता है। गर्भगृह के दांई तरफ़ के प्रतिमा शिल्प में एक कुलीन स्त्री अपने कंधे पर पर्स लटकाए हुए है और उसके पीछे परिचारिका पंखा झल रही दिखाई देती है। यह शिल्प 14 वीं शताब्दी का माना जाता है। इस प्रतिमा में दिखाई गए पर्स (सौंदर्य पेटिका) का चलन वर्तमान में भी दिखाई देता है। आज भी हम बाजार में जाएंगे तो इस प्रकार की सौंदर्य पेटिका खरीद सकते हैं।

छठवीं शताब्दी से लेकर वर्तमान में शिल्प में कितना बदलाव हुआ है, इस प्रतिमा शिल्प से पूर्णत: ज्ञात हो रहा है। यह प्रतिमा शिल्प सद्यनिर्मित अमरकंटक के जैन मंदिर का है। इस प्रतिमा में स्त्री सम्पूर्ण भारतीय शृंगार से ओतप्रोत होकर वायलियन वादन कर रही है। जबकि वायलियन युरोप का प्रमुख वाद्य यंत्र है।

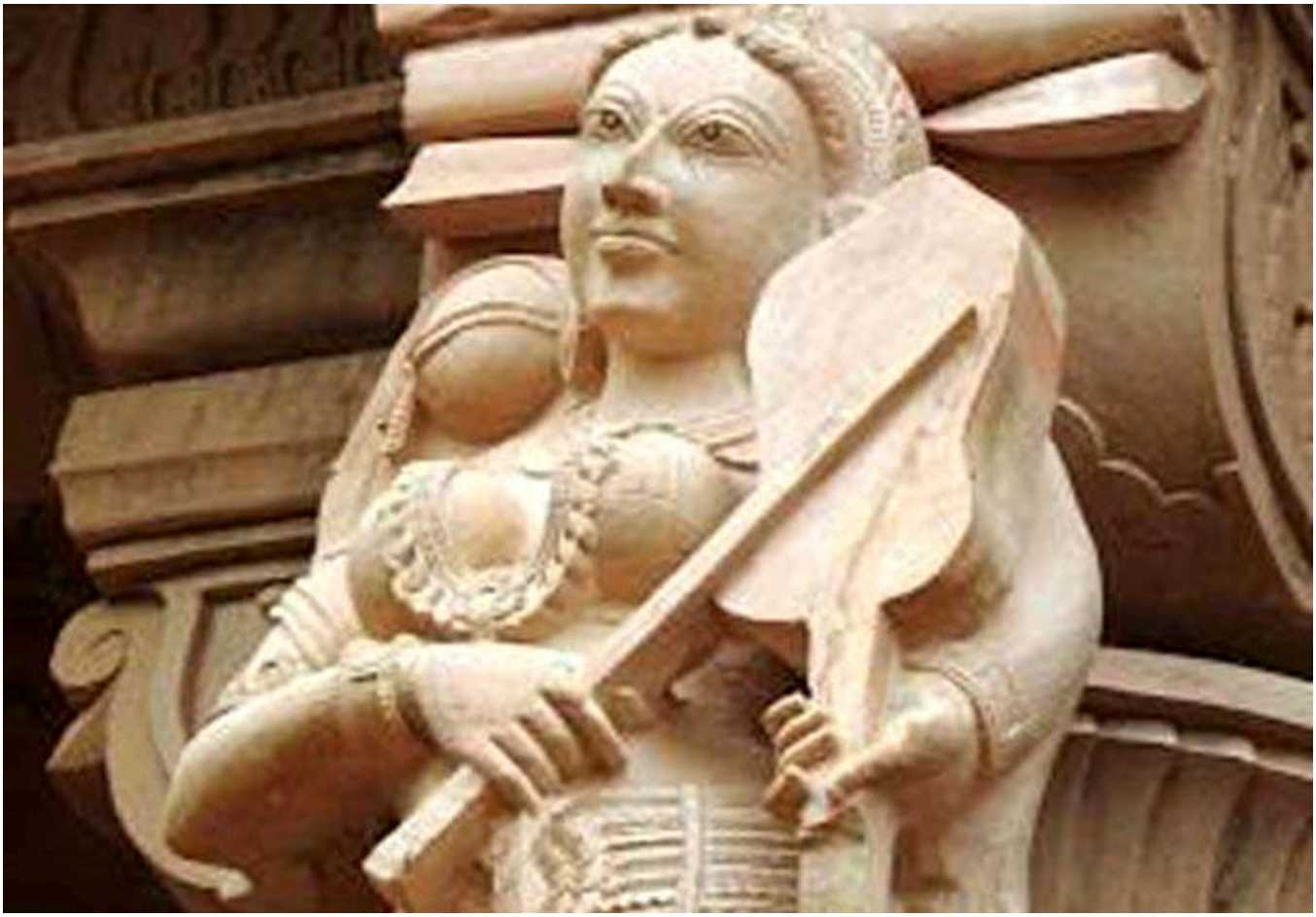

कितनी सहजता से शिल्पकार ने अपने शिल्प में वायलियन जैसे वाद्य यंत्र को अंगीकार कर लिया। प्रतिमा के गले में दो लड़िया हार एवं कटिमेखला की चौड़ाई इस शिल्प में अधिक दिखाई दे रही है। यह आभुषणों में भी परिवर्तन है। यही समय के साथ बदलाव है। काल के अनुसार परिवर्तन अवश्यसंभावी है और सनातन चलता रहेगा।

आलेख एवं छायाचित्र

ललित शर्मा इंडोलॉजिस्ट